शोध मंथन, Impact Factor 6.726 (SJIF), UGC No. 40908 ISSN: (P): 0976-5255 (e): 2454-339X
Vol. X, No.II, pp (717-724) April - June 2019

गाँधी दर्शन का समाजशास्त्र

डॉ० माईकल
स्नातकोत्तर गाँधी विचार विभाग
तिलका माँझी भागलपुर, विश्वविद्यालय
भागलपुर, बिहार
Email :drmaikalbh@gmail.com

सारांश

धर्म, दर्शन, समाज, सभ्यता, शिक्षा, सांस्कृतिक परंपरा, अर्थ, राजनीति और इतिहास आदि को देखने के गांधी के नजरिए की बारीकी से पड़ताल करने पर जाहिर होता है कि इस सबके प्रति उन्होंने अपना अलग नजरिया विकसित कर लिया था। उनका यह नजरिया उनकी प्रयोगधर्मिता तथा चिंतन–मंथन की प्रक्रिया से गुजरते हुए पुष्पित–पल्लवित हुआ था। गांधी के प्रयोग का क्षेत्र अत्यंत ही व्यापक था। उनका 'यह प्रयोग नैतिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक के साथ–साथ सामान्य असतीत्वमूलक समस्याएँदृ इन सभी क्षेत्रों पर होता है।' हालांकि उन्होंने इसकी मौलिकता की कभी कोई दावेदारी पेश नहीं की है। धर्मशास्त्रों, महापुरुषों, पूर्व–पश्चिम के जिन चिंतकों–विचारकों से उन्होंने ढेर सारी बातें ग्रहण की और उसे उदारतापूर्वक स्वीकार भी किया। लेकिन यहाँ यह भी गौरतलब है कि चिंतन की परंपरा को देखने–समझने और उसे विकसित कर वर्तमान चुनौतियों का मुकाबला करने लायक बनाने व उसे भविष्य के लिए भी उपयोगी–प्रासंगिक बनाने की प्रक्रिया में उन्होंने इसमें ढेर सारे संषोधन–परिवर्द्धन किए हैं। गांधी कहते हैं कि, 'महापुरुष हमारे लिए अपने जो अनुभव छोड़ गए हैं, वे मार्गदर्शक हैं। वे संपूर्ण नहीं हैं। संपूर्णता तो केवल प्रभु–प्रसादी है।'

प्रस्तावना

गांधी ने पुराने मूल्यों को तराशकर उसे नया बनाया है और नवीन मूल्यों के साथ उसकी संगति बिठाई है। यह संगति बेमेल नहीं है और नीरस तो कतई नहीं। गांधी कहते हैं कि, 'मुझे हमेशा एक ही रूप में दिखाई देने की कोई परवाह नहीं है। सत्य की अपनी खोज में मैंने बहुत से विचारों को छोड़ा है और अनेक नई बातें मैंने सीखा भी है।' गांधी के द्वारा कही गई इन बातों से साफ जाहिर होता है कि वे सदैव अपना आंतरिक विकास कर रहे होते हैं। जैसे ही उन्हें किसी विषय पर नवीन ज्ञान की अनुभूति होती है वे पुराने से चिपके रहने के बजाय नए का स्वागत करते हैं। वे इसकी तनिक भी परवाह नहीं करते कि लोग क्या कहेंगे कि देखो कल तक गांधी क्या कहता था और आज क्या कहने लग गया। इसलिए अपने पाठकों से उन्होंने कहा है कि, 'एक ही विषय पर लिखे दो लेखों में से मेरे बाद के लेख को प्रमाणभूत माने।' परंपरा के जड़

हो चुके और असहनीय भार बन चुके तत्वों को नकारने में उन्हें कोई गुरेज नहीं किया। बल्कि वह मानव सभ्यता की वास्तविक उन्नति के लिए उन्हें आवश्यक लगा। गांधी ने जब वकालत का पेशा किया तो उसे भी एक नई ऊंचाई प्रदान की। इस पेशे को लेकर यह धारणा प्रचलित है कि असत्य का सहारा लिए बगैर यह चल ही नहीं सकता। किंतु दक्षिण अफ्रीका में लंबे समय तक अपने वकालत के धंधे में गांधी ने कभी असत्य का प्रयोग नहीं किया। उनके इस पेशे का बड़ा भाग केवल सेवा के लिए अर्पित था और कभी–कभी तो वे आवश्यक खर्च तक नहीं लेते थे। उनहोंने जब तक वकालत की उनके लिए यह लोगों को न्याय दिलाने का जरिया ही था। वे अपने मुवक्किल के सच्चे मुकदमे में जीत और झूठा होने पर उसमें हार चाहते थे।

गांधी के इस विरोध का आशय यह कदापि नहीं है कि वे पश्चिम की अच्छाइयों को ग्रहण करने से इनकार करते हैं। बल्कि वे तो यहाँ तक कहते हैं कि, 'पश्चिम के पास बहुत कुछ ऐसा है, जिसे हम उससे ले सकते हैं, पचा सकते हैं और लाभान्वित हो सकते हैं। ज्ञान किसी एक देश या जाति के एकाधिकार की वस्तु नहीं है।' यह गांधी की विश्व को मौलिक देन है, जो बहती नदी की भांति प्रवाहमान है और उसमें लेशमात्र भी जड़ता के लिए कोई स्थान नहीं है।

यही कारण है कि गांधी के विचारों में ठहराव का एहसास नहीं बल्कि अद्भुत ताजगी भरी प्रतीत होती है सत्य, अहिंसा आदि शाश्वत मूल्यों से वह बोझिल नहीं होता। वर्तमान और भविष्य की चुनौतियों के प्रति वह आश्वस्त करता है। उसमें गहराई इतनी ही है कि डूबने का खतरा कम से कम हो जाता है और खतरों को झेलने, उसका मुकाबला करने के आनंद से भी वह वसीभूत कर देता है। यही वजह है कि उनके चिंतन में एक साथ दोस्त–दुश्मन, मानव–पशु, जड़–चेतन, प्रकृति–पर्यावरण सबके प्रति जीवंत प्रेम अभिव्यक्त हुआ है। उनका यह प्रेम सिर्फ मनोगत न होकर व्यावहारिक और तार्किक है। बेशक गांधी के तौर–तरीकों के किसी खास पहलू से किसी की असहमति संभव है। और यही तो उनके विचारों का वैशिष्ट्य है कि वह असहमतियों से संवाद करती है। असहमतियों का समाधान तलाशती है और वाजिब असहमतियों को आत्मसात करके आगे बढ़ती है। वह न तो आधुनिकता में ही खोती है और न ही परंपराओं के अन्धमोहपाश की ही गुलामी अथवा चाकरी करती है। गांधी जितने आदर्शवादी हैं शायद उतने ही यथार्थवादी भी। परंपरा से चले आ रहे पुराने मूल्यों पर पड़ी धूल को वे न केवल झाड़ते–पोंछते ही हैं, बल्कि उनका पुनराविष्कार भी करते हैं। जरूरत पड़ने पर अप्रासांगिक और बाधक बन चुकी पुरानी परंपराओं को खारीज करने में भी वे तनिक नहीं हिचकते। दीगर बात है कि जो मूल्य उन्हें शाश्वत व मानव समाज के लिए जरूरी लगते हैं, भले ही उसका पालन कितना ही कष्टप्रद क्यों न हो, उसे निर्भयता के साथ अपनाते हैं और बाकी समाज को भी उसे अपनाने के लिए प्रेरित करते हैं। प्रेरित करने की इस प्रक्रिया में वे स्वयं तो तेज चलते हैं लेकिन थोड़ा धीमा चलने वाले से चिढ़ते नहीं, बल्कि दुगुने उत्साह से उन्हें पुनः–पुनः आगे ले जाने की कोशिश में लग जाते हैं। ऐसा इसलिए हो पाता है कि वे मानव मात्र की सद्भावना में यकीन रखते हैं। उन्होंने 'पापी' से नहीं 'पाप' से नफरत करने की जरूरत को रेखांकित किया है।

हालांकि गांधी जब पारंपरिक शब्दों में अपने को सनातनी हिन्दू कहते हैं तब भी उनका हिन्दुत्व दुनिया के अन्य धर्मों के उद्दात मूल्यों को ग्रहण करने में संकोच नहीं करता। गांधी कहते हैं कि, 'मेरा धर्म भौगोलिक सीमाओं से मर्यादित नहीं है। यदि उसमें मेरा जीवंत विश्वास है, तो वह मेरे भारत–प्रेम का भी अतिक्रमण कर जाएगा।' इस रूप में गांधी पारंपरिक शब्दों में नए अर्थ और व्यापकता का समन्वय करते हैं। उन परंपरागत शब्दों की गांधी द्वारा की गई नवीन व्याख्या को सही संदर्भों में नहीं समझ पाने के कारण ही अक्सर भ्रांतियाँ पैदा होती है। इसी के चलते गांधीजी के द्वारा प्रयुक्त 'रामराज्य', 'हरिजन', 'अछूतोद्धार', 'अंतरात्मा की आवाज', 'हृदय–परिवर्तन' सहित अन्य शब्दों व धारणाओं को लेकर उनके आलोचक तथ्यों का मनमाने ढंग से चयन करते हैं और उसे पूरे संदर्भ से अलगाकर मनगढ़ंत अर्थ और निष्कर्ष निकाल बैठते हैं। जबकि गांधी के धर्म की अवधारणा में सभी धर्मों के प्रति परस्पर श्रद्धा, सम्मान और उसके उच्च आदर्शों के पालन व सहिष्णुता–मैत्री का विचार निहित है। इसलिए यह 'ईश्वर सत्य है' से 'सत्य ही ईश्वर है' तक पहुँचने का साहस दिखा पाता है। धर्म ही वह अनुशासन है जिसमें हमें अपने स्वभावगत असंतुलन पर विजय पाने और अपने व्यक्तित्व का समाकलन करने में सहायता मिलती है। गांधीजी मुख्यतः धार्मिक व्यक्ति थे। आध्यात्मिक क्रियाओं के अभ्यास तथा उपवासों और प्रार्थनाओं द्वारा एक ऐसे नये प्रकार के मानव प्राणी का निर्माण करना उनका लक्ष्य था, जो निर्भीक, निर्लोभ हो और घृणा से मुक्त हो। गांधी का आग्रह 'सादा जीवन और उच्च चिंतन' के प्रति है। क्योंकि वे भोग की कभी खत्म न होने वाली लालसा और प्राकृतिक संसाधनों की सीमाओं की पहचान करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि, 'हमारे लाखों–करोड़ों लोगों के लिए सुख–सुविधाओं वाला उच्च जीवन संभव नहीं और हम मुट्ठी भर लोग, जो सामान्य जनता के लिए चिंतन का दावा करते हैं, सुख–सुविधाओं वाले उच्च जीवन की निरर्थक खोज में उच्च चिंतन को खोने का जोखिम उठा रहे हैं।' वे विचारों की विविधता को तो कबूल करते हैं किन्तु उसके भीतर किसी प्रकार की संकीर्णता को बर्दाश्त करने के लिए तैयार नहीं होते। इन संकीर्णताओं को खत्म करने का उनका अपना अलग तरीका है, जिसे वे अक्सर 'सत्याग्रह' कहते हैं। पूर्व में इसके स्थान पर 'पेसिव रेजिस्टेंस' शब्द का प्रयोग किया जाता था। इस शब्द को अत्यंत ही संकुचित अर्थ में लिया जाता था। उसे कंजोरों का हथियार माना जाता है। क्योंकि उसमें द्वेष हो सकता है और उसका अंतिम स्वरूप हिंसा में भी प्रकट हो सकता है। पेसिव रेजिस्टेंस के प्रति इसी संकीर्ण धारणा के कारण गांधी दक्षिण अफ्रीका में हिंदुस्तानियों की लड़ाई के लिए अलग शब्द खोजने के लिए प्रवृत्त हुए। और 'सत्याग्रह' शब्द सामने आया। सत्याग्रह में किसी के प्रति 'वैर' अथवा हिंसा की कोई गुंजाइश नहीं बल्कि प्रेम, दया, करुणा, आत्मकष्टसहन के द्वारा प्रतिपक्ष के हृदय को प्रेममय बना देना और 'हृदय–परिवर्तन' ही इसका अभिष्ट है।

गांधीजी तथा उनके विचारों के आलोचक अक्सर उनपर आदर्शवादी, कल्पनालोकी और अव्यावहारिक होने का आरोप चस्पा करते रहते हैं। जबकि गांधी के यहाँ कोरे आदर्शवाद और आलस्य के लिए कोई जगह नहीं है। गांधी के विचार और सिद्धान्त उनके सांसारिक जीवन की प्रयोगधर्मिता से अनुप्राणित और प्रमाणित होते रहते हैं। सामाजिक जीवन के व्यापक अनुभवों

से गुजरते हुए ही उन्होंने अपने सिद्धान्त प्रतिपादित किए हैं। प्रयोग की कसौटी पर खरा उतरने के साथ–साथ यह मनुष्य समाज की दीर्घकालिक जरूरतों के भी अनुकूल है। उनके सिद्धांतों में वर्तमान की चुनौतियों का उत्तर देने की सामर्थ्य के बावजूद वह महज तात्कालिक नहीं है। बल्कि वह भविष्य की जवाबदेहियों के प्रति भी संवेदनशील है। संभवतः भविष्य की कसौटी पर उनके सिद्धांतों की वैज्ञानिकता को ज्यों–ज्यों परखा जाएगा त्यों–त्यों उसमें से संभावनाओं के नये–नये दरवाजे खुलते जायेंगे। सादगी, स्वदेशी और शरीरश्रम पर गांधी द्वारा दिये जाने वाले जोर को आज अनावश्यक अथवा अनुपयोगी मान लेने का कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता। अणुबम, परमाणु बम, हाइड्रोजन बम, न्यूट्रान बम से लेकर जैविक–रासायनिक अस्त्र–शास्त्रों के इस खतरनाक दौर में गांधी का सत्याग्रह न तो अव्यावहारिक प्रतीत होते हैं और न ही स्वप्नदर्शी की कोरी कल्पना ही जान पड़ते। बेशक ऐसी परिस्थिति में उनके इन विचारों के साथ–साथ सत्याग्रह की प्रासंगिकता और अनिवार्यता अवश्य बढ़ जाती है।

गांधीजी के जीवन का मूल उद्देश्य विशुद्ध रूप से धार्मिक था। उनके लिए यह समाज–सुधार का ही विस्तार था। उनकी मान्यता थी कि सारी मानवजाति के साथ तादात्म्य स्थापित किये बिना धार्मिक जीवन नहीं जिया जा सकता था। इसके लिए वे राजनीति में भाग लेना भी आवश्यक मानते थे। वे मनुष्य की तमाम गतिविधियों को एक–दूसरे से संबद्ध मानते थे तथा उसे सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और विशुद्ध धार्मिक के तौर पर अलग–अलग देखने को अनुचित मानते थे। उन्होंने कहा है कि, 'मानवीय कार्य से अलग किसी धर्म को मैं नहीं जानता। वह अन्य सब गतिविधियों को एक नैतिक आधार प्रदान करता है, जो अन्यथा उन्हें नहीं मिलेगा, और जीवन अर्थहीन कोलाहल और आवेश की एक भूलभुलैया–मात्र रह जाएगा।' यही कारण है कि गांधी अपनी सभ्यता–मीमांसा में पश्चिमी और पूर्व दोनों सभ्यताओं के प्रेरक तत्वों की गहन समीक्षा करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि, 'पश्चिमी सभ्यता शैतानी सभ्यता है।' 1896 में ही गांधी ने पश्चिम की सभ्यता को प्रधानतः हिंसक और पूर्व की सभ्यता को अहिंसक बताया था। क्योंकि पश्चिमी सभ्यता के प्रेरक तत्व अनिष्टकारी हैं। यह भोग को बढ़ाने वाली है। भोगवाद के स्थान पर वे नीति, संयम, सादगी तथा कर्तव्य–बोध पर आधारित सभ्यता की बात करते हैं। गांधी भौतिक उन्नति से ज्यादा मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति पर बल देते हैं। इसके पीछे गांधी की यह मान्यता काम कर रही होती है कि, 'मनुष्य के बाहरी आचरण से उसके गुणों की जो परीक्षा की जाती है, वह अधूरी और अनुमान–मात्र होती है।' वे प्रचलित आधुनिक शिक्षा को मनुष्य के सम्पूर्ण व्यक्तित्व निर्माण में अपर्याप्त मानते हुए इसके स्थान पर हाथ, हृदय और मस्तिष्क के संतुलित विकास के लिए 'बुनियादी शिक्षा' का विकल्प रखते हैं। गांधी ने अपने दक्षिण अफ्रीका प्रवास के क्रम में अपने द्वारा स्थापित 'टॉलस्टाय आश्रम' में रहने वाले परिवारों के बच्चों को शिक्षित करने के लिए भी प्रयोग किए थे। यहाँ मातृभाषा में शिक्षा दी जाती थी। वे हृदय की शिक्षा को अर्थात चरित्र के विकास को प्राथमिकता देते थे। आश्रम में यह रिवाज बनाया गया था कि जिस काम को शिक्षक न करें, वह बालकों से न कराया जायय और बालक जिस काम में लगे हों, उसमें उसके साथ उसी काम को करने वाला एक शिक्षक हमेशा रहे।

गांधी शिक्षा का अंतिम लक्ष्य छात्रों का आत्मिक विकास मानते हैं और आत्मिक विकास का उनके लिए अर्थ है– चरित्र का निर्माण करना, ईश्वर का ज्ञान पाना, आत्मज्ञान प्राप्त करना। यह आत्मिक शिक्षा शिक्षक के आचरण के जरिये ही दी जा सकती है। वे छात्रों पर बल–प्रयोग को अनुचित ठहराते हैं। टॉलस्टाय आश्रम में एक बार एक युवक के ऊधम से खीज कर जब गांधी ने उसको छड़ी से पीटा था तो इस कार्रवाई में उन्होंने अपनी पशुता का ही दर्शन किया था। अमेरिकी विद्वान होरेस अलेक्जेंडर कहते हैं कि, 'अहिंसक तरीके ही सत्य और न्याय को प्राप्त करने में समर्थ हैं।'

गांधी का पूरा दर्शन प्रचलित व्यवस्था के विकल्प के बतौर सामने आया है। समाज, सभ्यता–संस्कृति, सत्ता और संपत्ति को देखने–समझने और उसे नए संदर्भ के अनुरूप बनाने का भी उनका नजरिया वैकल्पिक ही है। जब वे अपरिग्रह की बात कर रहे होते हैं तो एक नये ढंग के समाजवाद की बात कर रहे होते हैं। जहां प्रचलित 'समाजवाद का आधार भौतिकवाद है, जबकि अपरिग्रह का आधार आध्यात्मवाद है। साधक के लिए किसी भी प्रकार के नियंत्रण की आवश्यकता नहीं होती। वह स्वयं के अनुशासन में चलता है। वह दूसरे के अनुशासन को स्वीकार नहीं करता है। समाजवाद में परिग्रह का रूपांतरण होता है, हस्तांतरण होता है, व्यक्ति की संपत्ति समाज की संपत्ति हो जाती है, लेकिन अपरिग्रह में संपत्ति का ग्रहण नहीं होता है, उसका परित्याग किया जाता है। अपरिग्रह का साधक न अपनी संपत्ति रखता है और न पद की संपत्ति को ग्रहण करता है, अपनी इच्छा से सर्व अनर्थ के मूल–परिग्रह का त्याग ही वस्तुतः सुख, शांति और आनंद का मार्ग है।' उसी प्रकार 'चुनाव और सत्ता–विभाजन का भी गांधीजी ने अपना विकल्प दिया था। गांधीजी को यह कहने में कोई हिचक नहीं थी कि संसद का चुनाव परोक्ष ढंग से होना चाहिए। पश्चिम के उदारवाद में प्रशिक्षित बुद्धिजीवी इसको प्रतिगामी कह सकता है। लेकिन गांधीजी के मतानुसार संसद की सत्ता बिलकुल सीमित होनी चाहिए। शायद उतनी सीमित जितनी जम्मू–कश्मीर के स्वायत्तता प्रस्ताव में है। राज्य विधानसभा की भी गांधीजी के विचार में बहुत ज्यादा सत्ता नहीं है। सर्वाधिक सत्ता, सर्वाधिक प्रशासनिक कार्य राज्य से नीचेवाली इकाइयों का होगा य यानी ग्राम–केन्द्रित इकाइयों का। इन इकाइयों के सदस्यों और शासकों को सारे बालिग नागरिक मिलकर चुनेंगे। अतः गांधीजी के परोक्ष चुनाव का विरोध करने वाले को पहले इस पर राय देनी होगी कि गांधीजी द्वारा प्रस्तावित इस उग्र विकेन्द्रीकरण का समर्थन करता है या नहीं।'

गांधी आत्म–आलोचना के जरिये आत्मशुद्धि करते हैं। उनकी दृष्टि में, 'आत्मशुद्धि के बगैर जीवमात्र के साथ ऐक्य सध ही नहीं सकता और न ही अहिंसा–धर्म का सर्वथा पालन संभव हो सकता है।' वे जीवन–मार्ग के सभी क्षेत्रों में शुद्धि की आवश्यकता जताते हैं। 'शुद्धि उनके लिए साध्य है य क्योंकि व्यष्टि और समष्टि के बीच ऐसा निकट का संबंध है कि एक की शुद्धि अनेकों की शुद्धि के बराबर हो जाती है।' गांधी के अनुसार शुद्धि हेतु व्यक्तिगत प्रयत्न करने की शक्ति सत्य–नारायण से हर मनुष्य को जन्मजात ही प्राप्त है। उनके लिए शुद्ध बनने का अर्थ है मन से, वचन से और काया से निर्विकार बनना, राग–द्वेषादि से रहित होना। इसी तरह गांधी

के लिए चरखा इसलिए महत्वपूर्ण था कि, 'विलायती कपड़े की खरीद के रूप में हिंदुस्तान के बाहर जानेवाले धन के प्रवाह को रोकने' का यह सबसे सक्षम जरिया था।

किसी ऐसे महापुरुष जिनका सामाजिक–सार्वजनिक जीवन लगभग पाँच दशक का रहा हो, उनकी आलोचना असंभव नहीं है। उनसे भूल होना, मानवीय कमियां प्रकट होना भी एकदम स्वाभाविक लगता है। निरंतर प्रयोगधर्मिता और गतिशीलता के कारण एक ही विषय पर उनके विचारों में परिवर्तन भी होते रहे हैं। इसके बरक्स गांधी के विचारों की आलोचना भी होती रही है। इन आलोचनाओं को गांधी ने पाथेय के रूप में स्वीकार किया है और जरूरत पड़ने पर आलोचकों से संवाद–साक्षात्कार कर उनके पक्ष को समझने की हर मुमकिन कोशिश भी की है। लेकिन अपना पक्ष उचित और नीतियुक्त–विवेकसम्मत होने की स्थिति में उन्होंने आलोचकों की कभी कोई परवाह नहीं की है। इसलिए उनके आलोचक उन्हें 'सनकी' आदमी मान बैठते हैं। दरअसल गांधी सत्य–अहिंसा की कसौटी पर खरे उतारने वाले अपने सिद्धांतों के प्रति अत्यंत ही दृढ़ संकल्पित हैं। यही कारण है कि वे यह कहने का भी साहस जुटा लेते हैं कि 'स्वराज और अहिंसा दोनों में से एक को चुनना हो तो मैं अहिंसा को ही चुनूँगा।' इससे उच्च आदर्शों के पालन के प्रति उनकी 'प्रतिबद्धता' का बोध होता है न कि किसी 'सनक' का। आलोचकों के ठीक विपरीत उनके भक्त भी दी हुई परिस्थिति की उपेक्षा कर चिंतन की गतिशीलता को दरकिनार करते हुए उन्हें 'भगवान' बना देने की गलती कर बैठते हैं। कुछ लोग यांत्रिक ढंग से गांधी को देखने की कोशिश करते हैं। दरअसल, 'गांधीजी की एक–एक बात के मशीनी अनुकरण के आग्रह का असली अर्थ है, उनके विचार और कर्म के जीवंत प्रेरक तत्त्व की भी उपेक्षा करना।' पूर्वाग्रही आलोचकों और उनके अंधभक्तों द्वारा गांधी के चिंतन तथा उसके वास्तविक संदर्भ को सही ढंग से नहीं समझ पाने के कारण ही ऐसी गलती अक्सर दुहराई जाती है। गांधी के 'अंतरात्मा की आवाज' को भी सही संदर्भ में समझने की आवश्यकता है। गांधी जब अन्तःकरण की अनुभूति की बात करते हैं तो इसके लिए वे दृढ़तापूर्वक प्रयास और अभ्यास को जरूरी मानते हैं। उनकी दृष्टि में, "अन्तःकरण तो केवल संवेदनशील हृदय के अंदर ही रहता है। अन्तःकरण हमें फूँक–फूँक कर कदम रखना सिखाता है। अन्तःकरण वाला व्यक्ति अपनी बात में बहुत आग्रही नहीं होता य वह हमेशा नम्र होता है य कभी उग्रता से काम नहीं लेता या हमेशा समझौता करने को, दूसरों की सुनने को तैयार रहता है य वह अपनी भूल स्वीकार करने के लिए सदैव इच्छुक, यहाँ तक कि उत्सुक रहता है।"

सत्य–अहिंसा के प्रति गांधी के विशेष आग्रह का कारण उनकी दार्शनिक, सामाजिक, राजनैतिक व ऐतिहासिक मान्यताओं में निहित रहे हैं। साध्य–साधन को परस्पर सम्बद्ध मानने के चलते साध्य–सिद्धि के लिए साधन–शुद्धि का उन्होंने विशेष ख्याल रखा है। वे साधन को 'बीज' और साध्य को 'वृक्ष' की भांति मानते हैं। जैसा बीज होगा वैसा वृक्ष होगा। इसलिए साध्य के अनुरूप साधन का होना वे आवश्यक मानते हैं। साधन–शुद्धि के प्रति अपनी इसी धारणा के कारण उन्होंने 5 फरवरी, 1922 को चौरा–चौरी की हिंसक घटना के बाद, ऐसे समय में असहयोग आंदोलन वापस ले लिया जब वह अपने सफलता के चरमोत्कर्ष पर था। इतना बड़ा

निर्णय बगैर किसी हिचक के ले लेना उनकी नजर में कायरतापूर्ण कार्यवाही नहीं थी। अहिंसा उनके लिए कायरता न होकर चरम वीरता का परिचायक थी। इसलिए उन्होंने 'कायरता से हिंसा को अच्छा' माना था। 'हिंसा' उनके लिए 'कायरता' का स्थानापन्न था न कि वीरोचित अहिंसा का। प्रसिद्ध लेखिका वीरा ब्रिटेन 'गांधीजी : ब्रिटेन में' शीर्षक लेख में लिखती हैं कि, 'यद्दिप गांधीजी भावना की दृश्टि से टैगोर के अत्यंत निकट थे, किन्तु जब उन्होने एक बार शांतिनिकेतन जाने पर देखा कि वहाँ के भोजनालयों में ब्राह्मण लड़कों के लिए विशेष आसान लगे हुए हैं तो इससे वे इतने व्यथित हुए कि उसके लिए टैगोर की भर्त्सना करने से अपने को न रोक सके।'

गांधीजी की अहिंसा में विश्वास के पीछे मूलतः यह धारणा है कि, 'मानव स्वभाव मूलतः एक–जैसा है और इसलिए वह प्रेम के प्रति अवश्य अपनी अनुकूल प्रतिक्रिया दिखाता है। गांधी चिंतन और कर्म के बीच एकात्म संबंध स्थापित करते हैं। पुरुषोत्तम अग्रवाल का मानना है कि, 'गांधी का अदम्य आकर्षण इसी बात में निहित है कि उनके यहाँ विश्लेषण और सक्रियता दो जुदा–जुदा चीजें न होकर एक समग्र निरंतरता में परस्पर गूँथी हुई चीजें हैं। वे सिद्धांत की अमूर्त पवित्रता और व्यावहारिक चुनौती की कड़वी वास्तविकता के बीच की दूरी को अपरिहार्य मानकर बैठ नहीं जाते, बल्कि इन दोनों के बीच पुल बनाने की लगातार कोशिश करते हैं। गांधीजी का सारा जीवन परस्पर विरोधी या एक–दूसरे से अलग–अलग दीखने वाले तत्त्वों या जीवन के पहलुओं के बीच पुल बनाने के पवित्र प्रयास का एक रूपक है।'

गांधी के चिंतन में व्याप्त इस मौलिकता की उपेक्षा कर इसे सही परिप्रेक्ष्य में शायद ही समझा जा सकेगा। मनुष्य और समाज के जीवन का शायद ही कोई ऐसा पहलू अछूता रहा है जिस पर उन्होंने अपने ढंग से विचार न किया हो। इसलिए किसी एक छोर को पकड़ कर बाकी की उपेक्षा करते हुए गांधी के दर्शन को समझना कठिन जान पड़ता है। उन्हें समग्रता में ही समझा जा सकता है। संदर्भ से काटकर गांधी के चिंतन को देखने–समझने की हर कोशिश अधूरी और कुरूप कही जाएगी। इस अध्ययन में हमारा प्रयास यही रहा है कि गांधी के दर्शन के विभिन्न पहलुओं को उसके सही सामाजिक–वैचारिक संदर्भ में समझा जाय।

संदर्भ ग्रंथ

1 लाल, बसंत कुमार, समकालीन भारतीय दर्शन, मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1991, पृ. **118**.
2 आत्मकथा, पृ. **277**.
3 गांधी, म.क., हरिजन बंधु, 30 अप्रैल, 1933.
4 वही.
5 आत्मकथा, पृ. **316**.
6 वही.
7 यंग इंडिया, 11 अगस्त, 1920.

8 एस. राधाकृष्णन (आमुख), महात्मा गांधी 100 वर्ष, संपादक, एस. राधाकृष्णन, सर्वोदय साहित्य प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, जून 1969, पृ. 3.

9 यंग इंडिया, 30 अप्रैल, 1931.

10 आत्मकथा, पृ. 278.

11 हरिजन, 24 दिसंबर, 1938.

12 आत्मकथा, पृ. 163.

13 वही, पृ. 166.

14 आत्मकथा, पृ. 292.

15 आत्मकथा, पृ. 293.

16 आत्मकथा, पृ. 296.

17 आत्मकथा, पृ. 297.

18 होरेस अलेक्जेंडर, *0*(आलेख), महात्मा गांधी 100 वर्ष, संपादक, एस. राधाकृष्णन, सर्वोदय साहित्य प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, जून 1969, पृ. 12.

19 जैन, पी.सी., *वैभव का समाजशास्त्र,* कॉलेज बुक डीपो, जयपुर, पुनर्मुद्रण, 2006, पृ. 167.

20 पटनायक, किशन, *भारतीय राजनीति पर एक दृष्टि,* राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, पहला संस्करण, 2006, पृ. 23.

21 आत्मकथा, पृ. 432.

22 वही.

23 वही.

24 संपूर्ण गांधी वांगमय, खंड–25, पृ. 23.

25 अग्रवाल, *पुरुषोत्तम, संस्कृति : वर्चस्व और प्रतिरोध,* राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण, 2008, पृ. 89.

26 यंग इंडिया, 21 अगस्त, 1924.

27 वीरा ब्रिटेन, *'गांधीजीः ब्रिटेन में'*(आलेख), महात्मा गांधी 100 वर्ष, संपादक, एस. राधाकृष्णन, सर्वोदय साहित्य प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण, जून 1969, पृ. 23.